महाकवि कालिदास का कालनिर्धारण

वरदा शारदा के वरदपुत्र महाकवि कालिदास की प्रतिभा की त्रिवेणी एक नाटककार, काव्यकार तथा गीतिकाव्यकार के रूप में प्रवाहित हुई है। उनकी काव्यकला जितनी प्रभविष्णु और विश्वविश्रुत है उनका जीवन उतना ही अन्धकारमय तथा जनश्रुतियों के उल्लेख से बोझिल है। अभी तक पाश्चात्य तथा पौरस्त्य समीक्षक उनके काल निर्धारण में एकमत नहीं हो पाये हैं। अपने-अपने मतों के लिए विभिन्न तर्क उपस्थित करते हैं। हम संक्षेप में उन मतों की समीक्षा करते हैं—

विभिन्न कालिदास— विद्वानों का यह भी अभिमत है कि यह नाम एक उपाधि है। अच्छे कवियों ने अपने को 'कालिदास' के नाम से प्रसिद्ध किया। इस नाम का कोई मूल कवि रहा होगा और उसने अपनी काव्यकला के कारण यह उपाधि पायी होगी। अन्त में पश्चात्वर्ती कवियों ने भी यही उपाधि धारण की। अतः मूलतः कालिदास कौन था तथा उसका मौलिक नाम क्या था? यह भी एक अनुसन्धान का विषय बना हुआ है। ८वीं शताब्दी के विख्यात कवि राजशेखर ने शृंगार-रस के तीन कवियों का उल्लेख किया है—

'एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयी किमु॥

विद्वानों का यह भी मत है कि यह कवि देवी काली का उपासक रहा होगा और उन्हीं की कृपा से उसे काव्य-शक्ति मिली होगी। इसी कारण से इसे 'कालिदास' अर्थात् देवी काली का दास (सेवक) उपाधि मिली।

टी.एस. नारायण शास्त्री ने ८ कालिदासों का उल्लेख किया है। तदनुसार ये उज्जैन के राजा हर्ष विक्रमादित्य (ई.पू. छठी शताब्दी) के सभाकवि थे और इनका उपनाम मातृगुप्त था तथा इन्होंने तीन नाटक एवं 'सेतुबन्ध' नामक महाकाव्य की रचना की।

(१) मालव सम्बत् के प्रवर्तक मालवा नरेश विक्रमादित्य (५७ ई.पू.) राजा के दरबार में कालिदास नाम का एक कवि था जिनका उपनाम मेधारुद्र था तथा उन्होंने 'कुमारसम्भव', 'रघुवंश', तथा 'मेघदूत' जैसे काव्यों का प्रणयन किया। (२) कामकोटि पीतम मूक शङ्कर (४३० ई.) के शिष्य कालिदास। इनका उपनाम कोटिजीत था और इन्होंने 'ऋतुसंहार', 'शृङ्गारतिलक', 'श्यामला दण्डक', 'नवरत्न माला' इत्यादि ग्रन्थों की रचना की। (३) धारानरेश मुंज का समकालीन परिमल कालिदास नामक एक कवि हुआ। इनका नाम पद्मगुप्त था और 'नवसाहसांक चरित' की रचना की। (४) 'नलोदय' काव्य के रचयिता कालिदास को 'यमककवि' के नाम से जाना जाता है। (५) 'चम्पूभागवत' के प्रणेता नवकालिदास। (६) अनेक समस्याओं की पूर्ति करने वाले अकबर दरबार के कालिदास। (७) 'लम्बोदर' प्रहसन के प्रणेता कालिदास। (८) 'संक्षेप शङ्कर विजय' के रचयिता अभिनव कालिदास। इनका उपनाम माधव था।[1]

इस स्थिति में मूल कालिदास को जानना एक समस्या सी बनी हुई है तथा उनकी रचनाओं की संख्या विद्वानों ने ४० के लगभग बतायी है। काले ने अपने मेघदूत में उनकी संख्या ३१ दी है।[2]

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में महाकवि कालिदास ने अपने पाण्डित्य से सहृदयों को प्रभावित किया किन्तु अपनी जीवनी से उतना ही अछूता रखा। इस प्रकार उनका कालनिर्धारण भी एक समस्या बना हुआ है।

कालनिर्धारण— अभी तक पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानों ने जो अभिमत प्रस्तुत किए, तदनुसार ई.पू. प्रथम सदी से लेकर १२वीं सदी तक स्वीकार किया जाता है। तथापि कतिपय प्रमाणों के आधार पर उनके काल की पूर्वापर सीमायें निर्धारित की जा सकती है। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक का रचयिता तथा महाकवि बाण द्वारा हर्षचरित में प्रशंसित कवि एक ही कालिदास है तो उनके काल की सीमा निर्धारित होने में कठिनाई नहीं है। १५०ई.पू. में शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र नामक राजा हुआ। इसी राजा को कालिदास ने अपने नाटक का नायक बनाया है। अतः उनके काल की पूर्ववर्ती सीमा द्वितीय शताब्दी से पूर्व नहीं रखी जा सकती।

थानेश्वर के सम्राट् हषवर्धन (६०६-६४७ ई.) के सभा-कवि बाण ने अपने हर्षचरित में 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।१।१६। कालिदास की प्रशंसा की है।

इसी प्रकार दक्षिण भारत में 'ऐहोल' नामक स्थान पर पुलकेशी द्वितीय के आश्रित कवि रविकीर्ति द्वारा चर्चित शिलालेख में इनका नाम पाया जाता है। यह शिलालेख ६३४ ई. में इतिहासज्ञों द्वारा मान्यता प्राप्त है। यथा—

---

१. विशेष के लिए– हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल लिट. चैप. ०४-९९

२. मेघदूत भूमिका ६-८ काले

''येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्तिः।।''

इस प्रकार उनकी परवर्ती सीमा सप्तम शताब्दी के पश्चात् नहीं मानी जा सकती है।

कालिदास के काल के सम्बन्ध में विभिन्न अभिमत—

१. ई. पू. प्रथम शताब्दी का मत।
२. ई. पू. द्वितीय शताब्दी का मत।
३. ई. की तृतीय शताब्दी का मत।
४. ई. की चतुर्थ शताब्दी का मत।
५. ई. की पञ्चम शताब्दी का मत।
६. ई. की षष्ठ शताब्दी का मत।
७. ई. की ११वीं शताब्दी का मत।

इन मतों पर क्रमशः संक्षेप में विचार किया जाता है—

१. ई. पूर्व प्रथम शताब्दी का मत— अधिकांश भारतीय विद्वान् कालिदास को 'शकारि' विक्रमादित्य के सभाकवि मानते हैं। यही उज्जयिनी नरेश विक्रम सम्बत् प्रवर्तक माने जाते हैं और यह सम्बत् ५७ वर्ष ई. पूर्व पड़ता है।[1] अतः कालिदास को ई.पू. प्रथम शतक में होना चाहिए। इसका प्रमुख आधार निम्न श्लोक बताया जाता है : 'धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः। ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य।'

२. विद्वानों की यह भी मान्यता है कि ये ही परमारवंशीय राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य हैं जिनका वर्णन गुणाढ्य की बृहत्कथा में उपलब्ध होता है। दिलीप एवं रघु के वर्णन में तथा बृहत् कथा में साम्य है। 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक के प्रथम अंक के एक अन्य कथन के 'दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रम महिम्नावर्धते भवान्' 'अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः' के आधार पर 'महेन्द्र' शब्द महेद्रादित्य तथा 'विक्रम' शब्द 'विक्रमादित्य' का संकेत करता है।

३. प्रो. राय के प्रयाग के समीप 'भीटा' नामक स्थान पर पायी गई एक शुंगकालीन मृण्मय मुद्रा से यह निष्कर्ष निकाला है कि मुद्रा पर अंकित दृश्य 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक के प्रथम अंक से साम्य रखता है। यह मुद्रा शुंगकाल (१८२ ई.पू.–७२ ई.पू.) तथा कालिदास के बाद की मानी है। अतः कालिदास को प्रथम शतक में होना चाहिए, ऐसा सिद्ध करने का प्रयास किया है।

४. श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा १९१४ ई. में सम्पादित 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार के कथन 'आर्ये ! इयं हि रसभावदीक्षागुरोः विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्।' से प्रतीत होता है कि इस नाटक की रचना विक्रमादित्य की राजसभा में अभिनीत करने के लिए की गई होगी।

---

१. विक्रमादित्य– राजबली पाण्डेय

५. महाकवि अश्वघोष और कालिदास की रचनाओं में पर्याप्त साम्य है।[1] अश्वघोष के ऊपर कालिदास का प्रभाव सुस्पष्ट है। अश्वघोष का काल महाराजा कनिष्क का काल ७८ ई. माना जाता है। अतः कालिदास को इसका पूर्ववर्ती अर्थात् प्रथम शतक में होना चाहिए।

६. रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु के द्वारा पाण्ड्य राजा को जीतने का वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वर्णन कालिदास का सामयिक वर्णन है। यह पाण्ड्य नरेश ई.पू. प्रथम शतक में वर्तमान था। अतः कालिदास का भी यही समय होना चाहिए।

७. डा. राजाबली पाण्डेय ने कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट में कहा है कि काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक पं. केशव प्रसाद मिश्र के पास अभिज्ञान शाकुन्तल की एक ऐसी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है जिसमें कालिदास के आश्रयदाता का नाम विक्रमादित्य 'साहसाङ्क' उपाधिधारी बताया गया है।

"आर्ये ! रसभावविशेष दीक्षागुरोः विक्रमादित्य साहसाङ्कस्याभिरूपभूयिष्ठेयं परिषत्।"

८. कालिदास के नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल के षष्ठ अंक के आधार पर निःसन्तान व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर सम्पत्ति का राज्याश्रित होना तथा चोरी के अपराध में मृत्युदण्ड मिलना, ये दोनों नियम ई.पू. ही प्रचलित थे। मनु, आपस्तम्ब आदि की स्मृतियाँ कार्यप्रणाली में थीं। पश्चात्वर्ती याज्ञवल्क्य, बृहस्पति आदि स्मृतियों में विधवा को सम्पत्ति पाने का अधिकार मिला।

९. विद्वानों की मान्यता है कि उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य शैव थे। ये सूर्यवंशीय राजा थे, जबकि गुप्तवंशीय राजा वैष्णव, चन्द्रवंशीय थे और उनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल, रघुवंश और कुमारसम्भव के मंगलाचरण से प्रतीत होता है कि वे शैव थे तथा रघुवंश में उन्होंने सूर्यवंशीय राजाओं का वर्णन किया। इस वर्णन में तथा सूर्यवंशीय राजाओं के वर्णन में पर्याप्त साम्य है। अतः कालिदास को प्रथम शतक ई.पू. होना चाहिए।

२. ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी का मत— इस मत के प्रवर्तक डा. कुन्हन राजा हैं। तदनुसार महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के भरत वाक्य 'आशास्यमीतिविगम प्रभृति प्रजानां सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे' के द्वारा राजा 'अग्निमित्र' का उल्लेख किया है। इस वाक्य के द्वारा सुख समृद्धि की याचना या समकालिक राजा का संकेत किया जाता है। अतः कालिदास को द्वितीय शताब्दी ई.पू. शुंगवंशीय विदिशानरेश अग्निमित्र के समकालीन होना चाहिए।

मेघदूत में 'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशा लक्षणां राजधानीम्' का संकेत विदिशा की सम्पन्नता तथा अग्निमित्र की राजधानी की ओर संकेत है।

३ ईसा की तृतीय शताब्दी का मत— इस मत के प्रमुख प्रवर्तक द.वे. केतकर हैं। तदनुसार रघुवंश के १६/४४ में 'अगस्तचिह्नोदयनात्' के रूप में दक्षिणायन को

---

१. रघुवंश-२१३४, बुद्ध च. १३/१७, रघु. २/४७, बुद्ध १०/२३ रघु. ३/१४१, बुद्ध १/२२

'अगस्त्यचिह्न' बताया है। ज्योतिष के अनुसार अश्विनी के आरम्भ से अगस्त्य नब्बे अंश पर पड़ता है। किन्तु ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर के समय में दक्षिणायन 'पुनर्वसु' के मध्य ५६ अंश ४० कला में होता था तो इस प्रकार ९० अंश पर होने का काल २८० ई. होना चाहिए। फलतः यही काल अर्थात् तृतीय शतक कालिदास का भी होना चाहिए। लेसेन भी यही काल स्वीकार करते हैं।

४. ईसा की चतुर्थ शताब्दी का मत या गुप्तकालीन मत— इस मत के प्रवर्तक अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् है किन्तु कुछ भारतीय विद्वान् भण्डारकर एवं मिराशी आदि भी इसका समर्थन करते हैं।

१. इतिहास में गुप्तकाल स्वर्ण युग समझा जाता है। कालिदास के काव्यों में सुख, वैभव तथा सम्पन्नता का वर्णन है। अतः कवि इसी काल का होगा।

२. ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१६ ई.) ने शकों को परास्त किया था तथा 'शकारि' की उपाधि व 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की।

३. कालिदास के काव्यों में 'गुप्' धातु का प्रयोग अधिकांश रूप से हुआ है। रघुवंश १/२१, १/५५, २/३, २/१४, ४/२६ आदि इस धातु का प्रयोग गुप्तकालीन राजाओं की ओर संकेत करता है। अतः कालिदास को गुप्तकाल में ही होना चाहिए।

४. चन्द्रगुप्त द्वितीय के पिता समुद्रगुप्त की हरिषेणकृत प्रशस्ति (३५०ई.) तथा कालिदासकृत रघुवंश में रघु की दिग्विजय-वर्णन में पर्याप्त साम्य है तथा वत्सभट्टि का मन्दसौर शिलालेख (४७३-४ ई.) भाव, भाषा एवं शैली में महाकवि कालिदास से प्रभावित प्रतीत होता है। अतः उन्हें इस शिलालेख के पूर्ववर्ती होना चाहिए।

५. कालिदास ने पूर्वमेघदूत (१४) में दिङ्नाग नामक एक बौद्ध दार्शनिक का संकेत किया है। इस दार्शनिक का काल (४००ई.) माना जाता है। अतः कालिदास को इसी के आस-पास होना चाहिए।

६. कालिदास ने इन्दुमती स्वयम्वर के श्लोकों में चन्द्र एवं इन्दु आदि शब्दों का प्रयोग किया है—

'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः, इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै।' इत्यादि के द्वारा विद्वानों ने चन्द्रगुप्त का संकेत माना है।

७. कुमारसम्भव की रचना का प्रेरणा स्रोत चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र 'कुमारगुप्त' रहा होगा। इसीलिए उन्होंने कुमारगुप्त की स्मृति को बनाये रखने के लिए 'कुमार' शब्द को प्रथम रखा है।

८. कालिदास की शैली अश्वघोष की शैली से विकसित तथा आकर्षक है, जो उन्हें अश्वघोष का परवर्ती सिद्ध करती है।

९. कालिदास ने ग्रीक ज्योतिष के 'जामित्र' तिथौच जामित्रगुणान्वितायाम्' (कु.स. ७/१) का प्रयोग किया है। इन शब्दों का आदान-प्रदान चतुर्थ शतक में माना जाता है। अतः कवि का यही काल होना चाहिए।

५. ईसा की पञ्चम शताब्दी का मत— इस मत के प्रस्तावक प्रो. के.बी.

पाठक है। कालिदास ने रघुवंश में महाराज रघु की दिग्विजय का वर्णन किया है। रघु ने 'वङ्क्षु' अर्थात् बल्ख देश में बहने वाली 'आक्सस' नदी के किनारे पर हूणों को परास्त किया था। इतिहास के अनुसार हूणों ने ५वीं सदी में ही 'आक्सस' नदी के तट पर अपना राज्य स्थापित किया और आक्रमण भी किया। कुमारगुप्त प्रथम के पुत्र स्कन्दगुप्त ने हूणों का सामना किया। अतः कालिदास का रघुविजय का वर्णन उक्त वर्णन के अनुसार होने से उनका समय भी ५वीं सदी ही होना चाहिए।

६. ईसा की छठीं शताब्दी का मत— इस मत को मानने वाले विद्वान् प्रो. मैक्समूलर, म.म. हरप्रसाद शास्त्री तथा जेम्स फर्ग्युसन एवं डा. हार्नली आदि हैं। विद्वानों का मत है कि ५४४ ई. से पूर्व किसी सिक्के या ताम्रपत्र आदि पर विक्रम सम्बत् का प्रयोग नहीं मिलता है। अतः इससे पूर्व यह सम्बत् ही नहीं था अपितु ५४४ ई. में मालवा के राजा यशोधर्मन् ने मुल्तान के पास कोह्नट नामक स्थान पर हूणों को परास्त किया और विजय के उपलक्ष में एक सम्बत् चलाया तथा इसे प्राचीनता का पुट देने के लिए ५६-५७ वर्ष से प्रचलित किया। यही यशोधर्मन् 'विक्रमादित्य' उपाधिधारी है तथा इन्हीं का वर्णन कालिदास ने अपने काव्यों में विजेता के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रो० मेक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'India what can teach us' में 'काव्य में पुनर्जागरण का सिद्धान्त' प्रचारित किया। तदनुसार ४ या ५ शतक में विदेशियों के आक्रमण से संस्कृत भाषा का विकास अवरुद्ध रहा जिसे 'अन्धकार युग' कहा जा सकता है। छठी शताब्दी में ही संस्कृत भाषा का पूर्ण विकास हुआ। यही समृद्ध लोकजीवन कालिदास के काव्यों में चित्रित है। अतः कालिदास का समय षष्ठ शतक होना चाहिए।

मेघदूत के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' (पू० २), प्रत्यासन्ने नभसि' (पू० ४), इत्यादि कथनों में परस्पर सामञ्जस्य बिठाने पर निष्कर्ष निकलता है कि यक्ष ने चान्द्र आषाढ़ एकादशी को मेघ देखा और दूसरे दिन ही श्रावण मास का प्रारम्भ होने वाला था। ज्योतिष के अनुसार एकादशी को समाप्त होने वाला आषाढ़ सौर मास होना चाहिए। कालिदास के समय इसी दिन दक्षिणायन और वर्षा-ऋतु का आरम्भ होता था। तदनुसार यह दिन २० जून ५१४ ई० को पड़ता है। अतः कालिदास का समय षष्ठ शतक होना चाहिए।

७. ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी का मत— कतिपय विद्वान् बल्लाल पण्डितकृत 'भोजप्रबन्ध' के अनुसार कालिदास को ग्यारहवीं सदी में रखते हैं। उनका कहना है कि कवि कालिदास धारा-नरेश महाराज भोज (१०२८-१०६० ई०) के सभाकवि थे। महाराज भोज संस्कृत के अनुरागी तथा विद्वत्प्रिय राजा थे।

पूर्वोक्त मतों की समीक्षा— यदि इन मतों के द्वारा प्रस्तावित तर्कों एवं उनके खण्डन की प्रणाली क्रमानुसार अपनायी जायेगी तो यह एक स्वतन्त्र रूप में ग्रन्थ ही बन जायेगा। अतः सामान्य रूप से उक्त मतों की समीक्षा करते हैं।

उपर्युक्त समस्त मतों में ईसा पूर्व प्रथम शतक तथा गुप्तकालीन मत ही अपनी ठोस आधार शिला रखते हैं।

ईसा पूर्व द्वितीय शतक का मत इतिहास के अनुसार सिद्ध नहीं होता है। अग्निमित्र

नामक राजा का 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करना तथा विदिशा राजधानी का संकेत इतिहास सिद्ध नहीं है।

तृतीय शताब्दी का मत भी मान्यता प्राप्त नहीं क्योंकि दक्षिणायन को 'अगस्त्य चिह्न' के रूप कालिदास द्वारा कहना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि कालिदास ने इसका प्रयोग एक विशेष तान्त्रिक दृष्टि को रखकर किया है। यह सामान्य संकेत है, विशेष नहीं।

ईसा की ५वीं सदी का मत भी मान्य नहीं है। क्योंकि हूणों की पराजय का संकेत ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य नहीं है तथा यह कहना है कि पाँचवीं सदी तक भारतीयों को हूणों का पता नहीं था, असंगत है क्योंकि महाभारत में भी हूणों का वर्णन मिलता है।

छठी शताब्दी का मत भी अमान्य है क्योंकि इस मत में ऐतिहासिक तथ्यों का सर्वथा अभाव है। उपलब्ध शिलालेखों में भी इसके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। मेघदूत के संकेतों एवं ज्योतिष की गणना के अनुसार सामञ्जस्य बिठाना भी उचित नहीं है क्योंकि इस सामान्य संकेतों को ज्योतिष से जोड़ना उचित नहीं।

ग्यारहवीं सदी का मत स्वयं अप्रमाणिक है, क्योंकि बल्लाल ने विभिन्न सामयिक कवियों को एक साथ ला खड़ा कर दिया है। उसमें ऐतिहासिक प्रमाण कम एवं कल्पना अधिक है।

इस प्रकार प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तथा गुप्तकालीन मत ही अपनी-अपनी आधार-भूमि पर आधृत है। पाठक इन दोनों मतों पर सहृदयता पूर्वक विचार करें। एक पाश्चात्य परम्परा का द्योतक तथा एक भारतीय परम्परा का प्रतीक है। इतना तो अवश्य है कि वे किसी एक राजा के आश्रित थे तथा उनका काल सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता का था।

उनके जीवन के समक्ष किसी भी प्रकार की कोई समस्या नहीं थी। अतः यह निर्णय पाठक पर छोड़ा जाता है।